7. द्विपद–दो पांव वाले प्राणी जैसे–स्त्री, पुरुष, मैना तो, हंस आदि द्विपद हैं।
8. चतुष्पद–हाथी, घोड़ा, गधा, बैल, बकरी, गाय, भैंस आदि पशु चतुष्पद कहलाते हैं।
9. कुप्योगोप्य–कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कुप्य का अर्थ धातु किया गया है, किन्तु यहाँ स्वर्ण, चाँदी की वस्तुओं के अतिरिक्त लोहे, लकड़ी, एवं मिट्टी आदि से बनी अन्य समस्त वस्तुओं का समावेश कुप्य में होता है। जैसे–पलंग, चारपाई, अलमारी, संदूक, टंकी इत्यादि।

परिग्रहपरिमाण के अतिचार

अन्य व्रतों की तरह इच्छविधिपरिमाणव्रत के भी पाँच अतिचार बतलाए गये हैं। वे हैं–क्षेत्रवस्तु प्रमाण अतिक्रम, हिरण्यस्वर्णप्रमाण अतिक्रम, द्विपद–चतुष्पदप्रमाण अतिक्रम, धन–धान्यप्रमाण अतिक्रम और कुप्यप्रमाण अतिक्रम। तत्त्वार्थसूत्र में द्विपद चतुष्पद प्रमाण अतिक्रम के स्थान पर दासी–दासप्रमाण अतिक्रम को अतिचार माना है–क्षेत्रवास्तुहिरण्यं सुवर्णधनधान्य दासी–दासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः।[1] किन्तु आचार्य समन्तभद्र ने अतिवाहन, अतिसंग्रह, विस्मय, लोभ व अतिभार वाहन को इस व्रत के पाँच अतिचार माने हैं[2] जबकि सागारधर्मामृत में वास्तु–क्षेत्र अतिचार, धन–धान्य बंधन अतिचार, कनक–रूप्यदान अतिचार, कुप्यभाव अतिचार और गवादौ गर्भतातिचार–इन पाँच को इच्छपरिमाण के अतिचार व्रत बतलाया गया है।[3] इनका खुलासा निम्न प्रकार है–

खेतवत्थुपमाणाइक्कमे

क्षेत्र और वास्तु (मकान) का प्रत्याख्यान करते समय जितना परिमाण रखना हो, उससे अधिक रखना, यह खेत वास्तु प्रमाणातिक्रम अतिचार कहलाता है। जैसे पंचम अणुव्रत धारक श्रावक एक क्षेत्र के परिमाण को बढ़ाने के लिए दूसरे क्षेत्र की

1. त०सू०, 7/24
2. अतिवाहन अति संग्रह-विस्मय-लोभातिभारवहनानि।
   परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाश्चः लक्ष्यन्ते।
   रत्न० 3/16
3. सागार०, 4/64

बाढ़ आदि तोड़कर पहले क्षेत्र के साथ मिला देना यह क्षेत्र प्रमाणातिक्रम अतिचार है।[1]

धन-धान्यपमाणाइक्कमे

धन एवं गेहूं, चावल आदि धान्य जो प्रमाण नियत किया जाता है, उसका उल्लंघन करना, अधिक धन-धान्य रखना धन-धान्य प्रमाणातिचार कहलाता है।[2]

हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कमे

हिरण्य व सुवर्ण का अर्थ है–सोना-चांदी आदि बहुमूल्य धातुएँ इनकी जितनी मर्यादा निश्चित की है, उसके विपरीत परिमाण करना हिरण्य सुवर्ण प्रमाणातिचार कहलाता है।[3]

दुपय-चउप्पयपमाणाइक्कमे

द्विपद का अर्थ है–दो पैरों वाले अर्थात् मनुष्य और चउप्पय का अर्थ है–चतुष्पद अर्थात् पशु। इसकी जितनी मर्यादा निश्चित की है, उसका उल्लंघन करना दुपय-चउप्पय प्रमाणातिचार है।[4]

कुवियपमाणाइक्कमे

इसका अर्थ है–गृहोपकरण जैसे–शय्या, आसन, वस्त्र, पात्र आदि घर का सामान। इनके विषय में जो मर्यादा श्रावक ने की है, उसका उल्लंघन करना कुवियपमाणाइक्कमे है।[5]

इच्छा परिमाण व्रत का मूल भाव यह है कि गृहस्थ अपनी आवश्यकता से अधिक न तो भूमि मकान आदि रखे, न धन-धान्य का संग्रह करे और न ही मर्यादा से अधिक पशु आदि रखे।

1. क्षेत्रवस्तुनः प्रमाणातिक्रमः प्रत्याख्यानकालगृहीत प्रमाणोल्लंघनमित्यर्थ।
   उपा०टीका, पृ० 35
2. अनाभोगादेरथवा लभ्यमान धान्याद्यभिग्रहं यावत्परगृह एव
   बन्धनबद्धं कृत्वा धारयतोऽतिचारोऽयमिति।।
   उपा०टीका, पृ० 35
3. उपा०टीका, पृ० 35
4. वही, पृ० 35
5. कुप्यं गृहोपस्करः स्थालकच्चोलकादि, अयंचातिचारोऽनाभोगादिना।।
   उपा०टीका, पृ० 35

उपासकदशांगसूत्र के अन्तर्गत दसों श्रावक अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार दो करण, तीन योग से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप-इन पाँचों अणुव्रतों का पालन करते हैं। अहिंसा अणुव्रत का पालन करते हुए श्रावक स्थूल हिंसा का, सत्य अणुव्रत का पालन करते हुए स्थूल असत्य का, अस्तेय अणुव्रत का पालन करते हुए स्थल चोरी का, ब्रह्मचर्य अणुव्रत का पालन करते हुए अब्रह्मचर्य का और अपरिग्रह अवणुव्रत का पालन करते हुए परिग्रह का परिमाण करते हैं। प्रत्येक अणुव्रत के 5-5 अतिचार बतलाए गए हैं, विवेकी श्रावक उनको ध्यान में रखते हैं ताकि अनभिज्ञता में भी उसके किसी व्रत में स्खलना न आ जाए।

2. गुणव्रत

अणुव्रतों के विकासक्रम को व्यवस्थित आधार प्रदान करने के लिए जैन दर्शन में गुणव्रत और शिक्षाव्रतों का विधान किया गया है। पाँच अणुव्रतों के पालन करने में जो उपकारक हों, जो उन्हें पुष्ट करते हैं, वे गुणव्रत कहे जाते हैं। पंडित आशाधर भी यही बतलाते हैं। उनका कहना है कि जो अणुव्रतों में विशुद्धि और उनके उपकारक विशेष हैं, वे ही गुणव्रत रूप में जाने जाते हैं।[1] स्वामी समन्तभद्र की दृष्टि में दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत और भोगोपभोगपरिमाणव्रत ये तीनों ही अष्टमूल गुणों में वृद्धि करते हैं, इसलिए इनका गुणव्रत कहते हैं।[2]

अणुव्रतों को ग्रहण करने के पश्चात श्रावक तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों को ग्रहण करता है, उपासकदशांगसूत्र में गुणव्रत को शिक्षाव्रतों में ही अन्तर्भूत कर शिक्षाव्रतों के सात भेदों का कथन मिलता है।[3] जैसे परकोटे नगर की रक्षा करते हैं, वैसे ही शीलव्रत अणुव्रतों की रक्षा करते हैं। इस प्रकार सप्त शीलव्रत (गुणव्रत और शिक्षाव्रत) की महत्ता घोषित हो जाती है। यहाँ दिग्व्रत, भोगोपभोग परिमाण व्रत और अनर्थदण्ड व्रत रूप त्रिविध गुणव्रतों के स्वरूप का प्रकाशन करना अभीष्ट समझती हूँ-

1. यदगुणायोपकारायाणुव्रतानां व्रतानि तत्।
   सागार० 5/1
2. दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च, भोगोपभोग परिमाणं।
   अनुवृंहणाद् गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्या:।।
   रत्न०, 4/1
3. पंचाणुव्वइयं सत्त सिक्खावइयं दुवालसविहं गिहि धम्मं पडिवज्जिसामि।।
   उपा०सू०, 1/12

दिग्व्रत

पाँचवें अणुव्रत में सम्पत्ति आदि की मर्यादा की जाती है। सम्पत्ति आदि की प्राप्ति के लिए इन्सान को दौड़-धूप करनी पड़ती है। प्रस्तुत व्रत में श्रावक उन प्रवृत्तियों का क्षेत्र सीमित करता है। वह यह प्रतिज्ञा करता है-चारों दिशाओं में व ऊपर नीचे निश्चित सीमा से आगे बढ़कर मैं किञ्चित् मात्रा भी स्वार्थमूलक प्रवृत्ति नहीं करूंगा। जीवनपर्यन्त के लिए ग्रहीत दिशावर्ती संकल्प दिग्व्रत कहलाता है।

श्रावकाचार का प्रतिपादन करने वाले प्रमुख श्वेताम्बर ग्रन्थ उपासकदशांग में दिग्व्रत के अतिचारों का विवेचन किया गया है, किन्तु उसके स्वरूप पर विस्तृत प्रकाश नहीं डाला गया है। किन्तु उपासकदशांगसूत्र के टीकाकार मुनि घासीलालजी ने दिग्व्रत में पूर्व-पश्चिम आदि दिशाओं की मर्यादा कर लेने का स्पष्ट निर्देश किया है।[1] आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज के अनुसार छठा व्रत पांचवें के अन्तर्गत ही लिया है।[2] आवश्यकसूत्र में ऊर्ध्व, अधो व अधो तिर्यक् दिशा का यथापरिमाण दिग्व्रत बतलाया गया है।[3]

रत्नकरण्डकश्रावकाचार में सूक्ष्म पापों से मुक्त होने के लिए दसों दिशाओं की मर्यादा करके जीवन पर्यन्त उनसे बाहर नहीं जाने के संकल्प को दिग्व्रत कहा है।[4] इसी ग्रंथ में दसों दिशाओं में स्थित समुद्र, नदी, पहाड़, पर्वत, शहर आदि की मर्यादा भी निश्चित करने को कहा गया है।[5]

योगशास्त्र में आता है कि जिस व्रत में दस दिशाओं (उत्तर, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, ऊर्ध्व-अधो दिशा, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य व वायव्व) में आने जाने के लिए दी गई सीमा का भंग नहीं किया जाता ऐसा दिग्विरति गुणव्रत कहलाता है।[6] समणसुत्तं

1. उपा०टीका० मुनि घासी लाल, पृ० 235
2. (आत्माराम) उपा०सू०, पृ० 31
3. छठा दिशिव्रत-उड्ढ दिशि का यथापरिमाण, अहो दिशि का यथापरिमाण तिरियादिशि का यथापरिमाण-
   आव०सू०-6, पृ० 101
4. दिग्वलयं परिगणितं कृत्वोऽहं बहिर्न यास्यामि।
   इति संकल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्यै-
   रत्न० 4/2
5. रत्न०, 4/3-4
6. दशस्वपि कृता दिक्षु यत्र सीमा न लङ्घ्यते।
   ख्यातं दिग्विरतिरिति प्रथमं तद गुणव्रतम्।।
   योग० 3/1

के अनुसार ऊपर, नीचे व तिर्यक् दिशाओं में गमनागमन या सम्पर्क आदि की सीमा बांधना दिग्व्रत गुणव्रत है–

उड्ढमहे तिरियं पि य, दिसासु परिमाणकरणमिह पढमं।
भणियं गुणव्वयं खलु, सावगधम्मेम्मि वीरेण।।[1]

दिग्व्रत के अतिचार

आचार्यों ने दिग्व्रत के अतिचारों का वर्णन किया है। उपासकदशांगसूत्र,[2] आवश्यकसूत्र[3] व तत्त्वार्थसूत्र[4] में ऊर्ध्वदिशि प्रमाणातिक्रम, तिर्यक्दिशि–प्रमाणातिक्रम, क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यन्तर्धान को दिग्व्रत के पाँच दोष बतलाए हैं किन्तु रत्करण्डकश्रावकाचार में ऊर्ध्वव्यतिपात, अधो व्यतिपात, तिर्यक् व्यतिपात, क्षेत्र वृद्धि व स्मृत्यन्तर्धान इन पाँच को दिग्व्रत के अतिचार गिनाया है–

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपातः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम्।
विस्मरण दिग्विरतेख्याशाः पञ्च मन्यते।।[5]

ऊर्ध्वदिशापरिमाण अतिक्रमण

ऊर्ध्वदिशा में गमनागमन के लिए जो क्षेत्र मर्यादा निश्चित कर रखी है, उस क्षेत्र को अनजाने में उल्लंघन कर जाना ऊर्ध्वदिशापरिमाण अतिक्रमण है।[6] श्रावकप्रज्ञप्ति टीका में ऊर्ध्वदिशा में पर्वत आदि के ऊपर जितने कोस तक जाने का प्रमाण स्वीकृत किया गया है, उसका उल्लंघन करना ऊर्ध्वदिशापरिमाण अतिक्रम बतलाया गया है।[7]

1. समण० 319
2. तयाणंतरं च णं दिसिव्वयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा। तंजहा–उड्ढ-दिसि पमाणाइक्कमे, अहो दिसि पमाणा-इक्कमे तिरिय दिसि पमाणाइक्कमे, खेत वुड्ढी, सइअंतरद्धा-
उपा०सू०, 1/46
3. आव०, 6 पृ० 101
4. उर्ध्वाधस्तिर्यगव्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तर्धानानि।
त०सू०, 7/25
5. रत्न०, 4/7
तथा देखिए सागार० 5/5
6. उड्दिसिपमाणातिक्मे उड्ढ दिसाइक्कमे।।
उपा०टीका० 38
7. श्रा०प्र०, टीका, 283

अधोदिशायथापरिमाण अतिक्रमण

नीची दिशा में जो गमनागमन की क्षेत्र मर्यादा की है उसका उल्लंघन अधोदिशायथापरिमाण अतिक्रमण कहलाता है।[1]

तिर्यग्दिशापरिमाण अतिक्रमण

पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, नैऋत्व, वायव्व, ईशान व आग्नेय आदि दिशा विदिशाओं में जो क्षेत्र मर्यादा रखी है, उसका अतिक्रमण हो जाना तिर्यग्दिशापरिमाण अतिक्रमण कहलाता है।[2] ऐसे ही भूमि के बिल और पर्वत की कन्दरा आदि में प्रवेश करके दिग्व्रत की सीमा का उल्लंघन करना भी तिर्यक्दिशापरिमाण अतिक्रम है।[3] कुछ एक देश विशेष ऐसे हैं, जो दिशाओं में हैं और बहुत लम्बे हैं अथवा उनका जो मार्ग है, वह भी बहुत विस्तीर्ण है। मर्यादा से बाहर ऐसे किसी देश या क्षेत्र में किसी लोभ के कारण से आना जाना तिर्यग्व्यतिक्रम अतिचार माना गया है।[4]

क्षेत्र वृद्धि

दिशा के परिणाम व्रत में जितने योजन रखे हों उसमें एक दिशा के योजन कम करके दूसरी दिशा में बढ़ाना[5] अर्थात् स्वीकृत क्षेत्र की सीमा वृद्धिगत करना क्षेत्र वृद्धि अतिचार कहलाता है।[6]

स्मृत्यन्तरद्धा या स्मृत्यन्तराधान

आचार्य अभयदेव सूरि ने स्मृत्यन्तरद्धा शब्द का अर्थ है मर्यादा का विस्तृत अथवा विस्मृत होना। इसी कारण इसे स्मृतिभ्रंश नाम से भी जाना जाता है। स्मृत्यन्तधीन में इस प्रकार का सन्देह करना कि 'मैंने सौ योजन की मर्यादा की है या पचास योजन

1. उपा० टीका, पृ० 38
2. उपा० टीका, पृ० 38
3. भूमि बिल-गिरिदरीप्रवेशादिस्तिर्यगतिक्रमः।।
चारित्र० पृ० 8
4. क्वचिद्दिक्कोणदोशादौ क्षेत्रे दीर्घाध्ववर्तिनि।
कारणाद् गमनं लोभात् भवेत्तिर्यग्व्यतिक्रम।।
लाटी० 119
5. एकतो योजन शतपरिमाणमभिगृहीतमन्यतो दस योजनान्याभिगृहीतानि।।
उपा० टीका, 38
6. श्रा०प्र० टीका, पृ० 167

की', विस्मृत होने पर, पचास योजन से बाहर जाने पर भी दोष लगता है, चाहे मर्यादा भले ही सौ योजन की ही क्यों न की गई हो।[1] इस प्रकार जो मर्यादा नियत की थी, वह पहले तो स्मरण थी, पर कुछ दिन बाद उसे भूल गया या नियत संख्या को भूलकर कोई और संख्या स्मरण हो गई, ऐसे दोष को स्मृत्यन्तराधान अतिचार कहा गया है।[2]

2. उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रत

किसी वस्तु का एक बार उपयोग में आना उपभोग कहलाता है और बार-बार जो उपयोग में आता है, वह परिभोग है। इसके विपरीत कहीं-कहीं पर एक बार काम में आने वाली को परिभोग व बार-बार काम में आने वाली को उपभोग कहा है।[3] रत्नकरण्डकश्रावकाचार में आगम कथन में भी इसकी पुष्टि होती है-भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्य।[4] रत्नकरण्डकश्रावकाचार में पाँच इन्द्रियों के विषयभूत भोजन, वस्त्र आदि जो एक बार भोगकर छोड़ दिए जाएँ, उन्हें भोग व एक बार भोगकर भी पुनः भोगे जाएँ, उसे उपभोग कहते हैं। उपासकदशांगसूत्र में उपभोग परिभोग व्रत के दो भदे माने हैं-भोजनाश्रित और कर्माश्रित।[5]

उपासकदशांगसूत्र में आता है कि आनन्दश्रावक ने उपभोग परिभोग व्रत में इक्कीस वस्तुओं की मर्यादा कर दिग्व्रत का जीवन पर्यन्त पालन किया था।[6] श्रावक प्रतिक्रमण में श्रावक को छब्बीस वस्तुओं के परिमाण को निश्चित करने के लिए कहा है।[7]

निस्संदेह गुणव्रत के विवेचन में आचार्यों का भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रहा है।

आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र[8] में तथा आचार्य वसुनन्दि ने वसुनन्दि

1. स्मृत्यन्तर्धा-स्मृत्यन्तर्धानं स्मृतिभ्रंशः किं मया व्रतं गृहीतं शतं मर्यादया पञ्चाशन्मर्यादया वा इत्येवमस्मरणे योजनशतमर्यादायामपि पञ्चाश तमतिक्रमातोऽयमतिचारोऽवसेय इति।। उपा० टीका, पृ० 38
2. लाटी० 121
3. उपयुज्यते पौनः पुन्येन सेव्यत इत्युपभोगो भवनवसनादि। परिभुज्यति इति परिभोगः आहारं कुसुमविलेपनादि। उपा० टीका, पृ० 17
4. रत्न. 4/17 तथा मिलाइए समी० धर्म० 4/14/71 पृ० 121
5. उवभोगपरिभोगे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-भोयणओ य कम्मओ य। उपा०सू० 1/47
6. आव०सू० अणुव्रत 7
7. उपा०सू० 1/22-38
8. त०सू० 7/16

श्रावकाचार[1] में उपभोग परिभोग परिमाण व्रत को भी शिक्षाव्रत बतलाया है, जबकि आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्डकश्रावकाचार में[2] पं० सागारधर्मामृत[3] में आचार्य सोमदेव ने उपासकाध्ययन[4] में उपभोगपरिमाणव्रत को गुणव्रत माना है।

श्वेताम्बर परम्परा में ग्रन्थों में श्रावक के सातवें व्रत का नाम उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत है[5] किन्तु दिगम्बर परम्परा के मान्य ग्रंथों में इस व्रत का नाम उपभोगपरिमाणव्रत मिलता है।

उपभोग-परिभोग व्रत में वस्तुओं का उपभोग करते समय गृहस्थ को निम्न पाँच बातों से बचना आवश्यक है। वे इस प्रकार हैं :-

(क) त्रस वध

जिन वस्तुओं में त्रस जीवों का वध होता है, उनका सर्वथा त्याग करना अनिवार्य है। जैसे-जैन समुदाय को कौड लिवर आयल एवं रेशमी धागे आदि से बने वस्त्रों तथा मांस आदि पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

(ख) बहुवध

जिन वस्तुओं को तैयार करने में त्रय जीवों का सहारा तो नहीं लिया गया है, क्योंकि उस वस्तु के तैयार होने पर उसमें त्रस जीव पैदा हो जाते हैं अथवा उसमें असंख्य स्थावर जीवों की हिंसा होती है। जैसे मदिरा और कच्ची शराब आदि त्रस जीवों के वध से निर्मित नहीं होती, किन्तु इसके निर्माण करने में पदार्थ को सड़ाना गलाना पड़ता है, जिसेस उसमें असंख्य त्रस जीव पैदा हो जाते हैं, ऐसे जीवाणु मार घोल में मदमत्तता की क्षमता (शक्ति) अधिक हो जाती है इस कारण ऐसे दुर्गुणी मद-मदिरा एवं सुरामेरय आदि बहुवध पदार्थों का सर्वथा त्याग करना कल्याणकारी होता है।

(ग) प्रमाद

जिस वस्तु के सेवन करने से प्रमाद अर्थात् अपराध की अभिवृद्धि होती है और

1. वसु०श्राव० 217
2. रत्न० 3/36-37
3. सागार० 5/13-19
4. उपासका 759-764
5. (क) उपा०सू० 1/22
   (ख) त०सू० 7/16

गुणों की हानि होती है ऐसे गरिष्ठ व तामसिक भोजन, अतिमात्रा में विकृतियों को पैदा करने वाली वस्तुओं का सेवन तथा अत्यन्त कोमल आरामदेय गद्दों एवं आसनों का भी उपभोग करना मनुष्य को त्याज्य (अहितकर) है।

बौद्धधर्म में भी कुशल कर्मों में गृहस्थ एवं भिक्षु को सुरामेरयमज्जमपादद्वाना अर्थात् शराब मदिरा आदि के सेवन का निषेध किया गया है। ऐसे ही नर्म रेशमी वस्त्रों एवं गद्दों, आसनों के उपयोग एवं उपभोग को भी वर्जित बतलाया गया है।[1]

(घ) अनिष्ट

जिन वस्तुओं के सेवन से स्वास्थ्य बिगड़ता है, ऐसी अधपकी हुई और चलित रस वाली वस्तुओं को सेवन करना प्राणियों को वर्जित है।

(ङ) अनुपसेव्य

जिस वस्तु का सेवन शिष्ट सम्भव नहीं है, ऐसी वस्तुएँ घृणित व अनुपसेव्य मानी गई है। ऐसे अनजान फल व मांस, मछली, अंडे का न खाना अनुपसेव्य उपभोगोपभोगपरिमाणगुणव्रत हैं।[1]

उपभोग-परिभोग-परिमाण-व्रत के अतिचार

यद्यपि उपासकदशांगसूत्र में उपभोग-परिमाण व्रत के दो भेद किए हैं–भोजन सम्बन्धी और कर्म सम्बन्धी।[2] किन्तु ग्रन्थ में इस व्रत के जो अतिचार बतलाए गए हैं, वे पाँचों ही अतिचार भोजन सम्बन्धी ही हैं, कर्म सम्बन्धी नहीं। ग्रन्थ में कर्म सम्बन्धी पाँच अतिचारों का उल्लेख न करके पन्द्रह कर्मादानों का उल्लेख पृथक् रूप में किया गया है।[3] दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ सागारधर्मामृत में भी खरकर्म के रूप में पन्द्रह अतिचारों का उल्लेख मिलता है।[4]

उपासकदशांगसूत्र में सचित्त आहार, सचित प्रतिबद्ध आहार, अपक्व औषधि भक्षण, दुष्पक्व औषधि भक्षण और तुच्छ औषधि भक्षण–ये पाँच इस व्रत के भोजन सम्बन्धी अतिचार माने हैं।[5] तत्त्वार्थसूत्र में कुछ भिन्नता के साथ सचित्त आहार,

1. अमृत महोत्सव गौरव ग्रंथ 72
2. उपा० सू० 1/47
3. वही०, 1/47
4. सागार० 5/21-23
5. तत्थणं भोयणाओ समणोवाएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समारियव्वा
   तंजहा-सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धारे, अप्पडलिओ सहिभक्खणया
   दुप्पडलिओसहिभक्खणया, तुच्छो सहिभक्खणाय। उपा०सू०, 1/47

सचित्त संबद्धाहार, सचित्त मिश्राहारा, अभिषव आहार (मादक द्रव्य) और दुष्पक्व आहार (विषाक्त आहार) इन पाँच अतिचारों की चर्चा है।[1] रत्नकरण्डकश्रावकाचार में विषयविषयानुप्रेक्षा अनुस्मृति, अतिलौल्य, अतितृष्णा और अत्यनुभव को उपभोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार बतलाया गया है।[2]

सचित्त आहार

सचित्त अर्थात् पृथ्वीकाय, अप्काय एवं वनस्पतिकाय का भक्षण करना सचित्त आहार अतिचार है।[3] श्रावकप्रज्ञप्ति में बतलाया गया है कि कन्दमूलादि जो चेतना सहित होते हैं, सचित्त आहार कहे जाते हैं।[4] सागारधर्मामृत में कच्ची ककड़ी वगैरह को भी सचित्त कहा गया है। अज्ञान या प्रमाद से कच्ची पालक, ककड़ी आदि का मुख में डालना या खाना सचित्त आहार अतिचार कहलाता है।[5]

सचित्त प्रतिबद्ध आहार

सचित्त वस्तु के साथ लगी हुई अचित्त वस्तु, गोंद आदि का भक्षण करना अथवा गुठलनी सहित अचित्त ऐसे खूजर आदि फल को खाना या गुठली वाले खजूर आदि को कड़ाही में भूंज कर अचित्त समझकर उसे मुख में डालना सचित्त प्रतिबद्ध आहार है[6] जबकि श्रावकप्रज्ञप्ति के अनुसार चैतन्य द्रव्य से संश्लिष्ट आहार को ही सचित्त प्रतिबद्ध आहार बलताया गया है।[7]

अपक्व दोष

अग्नि से जिसका संस्कार नहीं किया गया है, ऐसी शाली आदि कच्ची

1. सचित्तसम्बद्धसंमिश्राभिषवदुष्पक्वाहाराः।
   त०सू० 7/30
2. दे० सागार०, 4/20
   रत्न०, 3/44
3. संचित्ताहारे त्ति सचेतनाहारः पृथिव्यप्कायवनस्पति।
   उपा० टीका, पृ० 41
4. श्राव०प्र० पृ० 268
5. सागार०, पृ० 50
6. सचित्ते वृक्षादौ प्रतिबद्धस्य गुन्दादेरभ्यवहरणाम् अथवा सचित्ते-अस्थि के
   प्रतिबद्धं यत्पक्वमचेतनं खर्जूरफलादि तस्य सास्थिकस्य कटाहमचेतनं भक्ष-
   यिष्यामीतरत्परिहरिष्यामि इति भावनया मुखे क्षेपणामिति, एतस्य चातिचारत्वं व्रतसापेक्षत्वादिति।
   उपा०टीका०, पृ० 41
7. तत्प्रतिबद्धं च वृक्षस्थगुंद पक्वफलादि लक्षणम्। -श्रा०प्र०, 286

औषधियों का बिना उपयोग के भक्षण करना अपक्वदोष है।[1] श्रावकप्रज्ञप्ति में भी आता है कि भोजन पका हुआ न होकर कच्चा हो, वह अपक्व भोजन कहलाता है, उसका सेवन करना दोषपूर्ण माना गया है।[2]

दुष्पक्व दोष

कुछ कच्ची और कुछ पक्की ऐसी आधी पकी हुई औषधियों को पक्कवबुद्धि से ग्रहण करना दुष्पक्वौषधि दोष हैं।[3]

तुच्छ औषधि

श्रावकप्रज्ञप्ति में मूंग की फलियों आदि को नि:सार वस्तु समझकर तुच्छ नाम दिया है।[4] अत: जिसमें खाने का पदार्थ कम हो और फैंकने का अधिक हो, ऐसी कोमल (कच्ची) व ताज़ी मूंगफली, बेर आदि तुच्छ असार वस्तुओं को अचित्त करके व्रत की अपेक्षा रखता हुआ भक्षण करना तुच्छौषधि भक्षण अतिचार है।[5]

ये भोजन के पाँच अतिचार उपलक्षण मात्र हैं, परन्तु मधु, मांस व रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग होने पर भी इनके अतिक्रम व अतिक्रमण करने से अतिचार लगते हैं।

कर्मादान

भोजन सम्बन्धी अतिचारों का उल्लेख करने के बाद जो कर्म सम्बन्धी पन्द्रह अतिचार गिनाए गए हैं।[6] वे ऐसे कर्म हैं, जिनसे अत्याधिक हिंसा ही होती है। अत: वे श्रावक के लिए पूर्णत: वर्जित है। ये कर्मादान निम्न प्रकार हैं–

1. अग्निनाऽसंस्कृताया: ओषधे:–शल्यादिकाया भक्षण्ता–भोजनामित्यर्थ:। उपा०टीका०, पृ० 41
2. श्रा०प्र०, 286
3. उपा०टीका० 41
4. तुच्छास्त्वसारा मुदगफलीप्रभृतय इति। श्रा०प्र०, 286
5. तुच्छा–असारा औषधय:–अनिष्पन्नमुद्गफलीप्रभृतय:।। उपा०टीका, 41
6. (क) उपा०सू०, 1/47
   (ख) आव०सू०, 7 पृ० 102
   (ग) योग०, 3/99–100

1. इंगाल कम्मे (अंगार कर्म)

कोयले बनवाकर बेचने का धंधा एवं दूसरे भी ईंट, चूना, बर्तन आदि पकाने का धंधा इत्यादि अग्नि के आरंभ का कार्य करके जीवन निर्वाह करना अंगार कर्म है।[1] यह श्रावक विशेषकर जैन सद्गृहस्थ के लिए अकरणीय कर्म है।

2. वणकम्मे (वनकर्म)

ऐसे धंधे करना, जिनका समबन्ध वन या जंगल से हो, वनकर्म बतलाया गया है।[2] इसमें वृक्षों को काटकर लकड़ियाँ बेचना, बस्ती के लिए जंगल साफ करना अथवा जंगल में आग लगाना आदि आता है। जंगल में कटे हुए या जिन्हें नहीं भी काटा गया, ऐसे वृक्ष के पत्ते, फल, फूल आदि को बेचना, चक्की में अनाज दलकर या पीसकर आजीविका चलाना आदि जैसे वनकर्म का करना श्रावक को वर्ज्य है।[3]

3. साड़ी कम्मे (शकट कर्म)

गाड़ी आदि बनाकर बेचने का धंधा करना शकटकर्म कहलाता है।[4] विविध अंग पहिए, आरे स्वयं बनाना, दूसरों से बनवाना अथवा बनवा कर बेचना व अन्य से बिकावाना इत्यादि व्यवसाय का नाम शकटाजीविका है।[5] ऐसे जीवोकोपार्जन के दोषों से श्रावक को सदैव दूर रहना चाहिए।

4. भाड़ी कम्मे (भाटी कर्म)

भाटी का अर्थ है भाड़ा। गाड़ी, जहाज आदि रखकर दूसरों को किराये पर देना भाटी कर्म कहलाता है।[6] गाड़ी, बैल, ऊँट, भैंसा, गधा, खच्चर, घोड़ा आदि पर भार लादकर किराया लेना अथवा इन्हें किराए पर देकर अपनी आजीविका चलाना भाटक जीविका कहलाती है।[7]

1. अंगारकरणपूर्वकरतद्विक्रय:, एवं यदन्यदपि वह्नि रामारम्भपूर्वकं जीवन मिष्टकाभाण्डकादिपाकरूपं तदंगार कर्मेति।। उपा०टीका, पृ० 43
2. 'वनकर्म'–वनस्पतिछेदनपूर्वक तद्विक्रयजीवनं। वही, पृ० 43
3. योग०, 3/102
4. शकटकर्म शकटानां घटनविक्रयवाहनरूपं। उपा०टीका, पृ० 43
5. शकटानां तदंगानां घटनं खेटनं तथा। विक्रयश्चेति शकटाजीविका परिकीर्तिता।।योग०, 3/103
6. 'भाटककर्म' मूल्यार्थं गच्छादिधि: परकीय भाण्डवहनं।। उपा०टीका, पृ० 43
7. शकटोक्षलुलायोष्ट्रखराश्वतरवाजिनाम्। भारस्य वहनाद् वृत्तिर्भवेद् भटकजीविका। योग०, 3/104

5. फोड़ी कम्मे (स्फोटी कर्म)

कुदाला या हल आदि से भूमि का कर्षण करना स्फोटकर्म कहलाता है।[1] तालाब, कुएँ आदि खोदने, पत्थर फोड़ने इत्यादि पृथ्वीकाय के घातक कर्मों से जीविका चलाना स्फोटक जीविका है। जैसे कहा भी गया है–

सरः कूपादिखनन शिलाकुट्टनकर्मभिः।
पृथिव्यारम्भसम्भूतैर्जीवनं स्फोट जीविका।।[2]

ऐसे कर्मों को करने में पापोपार्जन होता है। अतः सद्गृहस्थ को इन खोटी आजीविकाओं के साधनों से सदा ही दूर रहना चाहिए।

6. दन्त वाणिज्जे (दांत का व्यापार)

हाथी दांत, शंख, कोड़ी और सीप आदि के व्यापार से जीवन निर्वाह करना दंत वाणिज्य है।[3] दांत, केश, नख, हड्डी, चमड़ा तथा रोम इत्यादि जीवों के अंगों को उनके उत्पत्ति स्थानों पर जाकर व्यवसाय के लिए क्रय-विक्रय करना दन्त वाणिज्य बतलाया गया है।[4]

7. लक्ख वाणिज्जे (लाक्षा वाणिज्य)

जिसमें बाहर के अनेक जीवों का विनाश हो, ऐसे लाख आदि का व्यापार करना लाक्षा वाजिणज्य है।[5] लाख, मेनसिल, नील, धातकी वृक्ष, टंकणखार आदि पापकारी वस्तुओं का व्यापार करना लाक्षा वाणिज्य कहलाता है।[6]

---

1. 'स्फोटकर्म' कुद्दालहलादिभिर्भूमिदारणे जीवनं।।
उपा०टीका, पृ० 43
2. योग०, 3/105
3. 'दन्तवाणिज्यं' हस्तिदन्तशंखपूतिकेशादीनां तत्कर्मकारिभ्यः क्रयेण तद्विक्रय पूर्वकं जीवनं।।
उपा०टीका, पृ० 43
4. दन्तकेशनखास्थित्वग्रोम्णो ग्रहणमाकरे।
त्रसांगस्य वाणिज्यार्थ दन्तवाणिज्जमुच्यते।।
योग० 1/106
5. 'लाक्षावाणिज्यं सञ्जातजीवद्रव्यान्तरविक्रयोपलक्षण।।
उपा०टीका, पृ० 43
6. लाक्षा-मनः शिला-नीलो-धातकी-टंकणादिनः।
विक्रयः पापसदनं लाक्षावाणिज्यमुच्यते।।
योग० 1/107

8. रस वाणिज्जे (रस वाणिज्य)

मदिरा जैसे पेय रसों का व्यापार करना रस वाणिज्य कहलाता है।[1] हिंसा और दुराचार की दृष्टि से मादक तत्त्वों का सेवन त्याज्य है। आचार्य ने मक्खन, चर्बी, शहद आदि को भी इसी रस वाणिज्य का अंग बतलाया गया है।[2] अतः इन रसों का व्यापार छोड़ देना ही लाभकारी है।

9. विस वाणिज्जे (विषय वाणिज्य)

जिनसे जीवों का विनाश हो, ऐसे शस्त्र, सोमल एवं अफीम आदि का व्यापार विष वाणिज्य है।[3] योगशास्त्र में भी बतलाया गया है कि शृंगिल, सोमल आदि विष, तलवार आदि शस्त्र, हल, रहट, अंकुश, कुल्हाड़ी तथा हरताल आदि वस्तुओं के विक्रय से जीवों का घात होता है। अतः श्रावक को त्रस हिंसा के उत्पादक वस्तुक्रय-विक्रय का सर्वथा त्याग करना चाहिए।[4]

10. केस वाणिज्जे (केश वाणिज्य)

केश वाले दास, गौ, ऊंट, हाथी, घोड़े, मयूर एवं चमरी गाय तथा उनके बालों का व्यापार करना केश वाणिज्य है।[5] अतः ऐसे दो पैरों वाले और चार पैर वाले जीवों से आजीविका कमाने के साधनों को मनुष्य को नहीं अपनाना चाहिए।

11. जन्त पीलनकम्मे (यन्त्र पीड़न कर्म)

तिल, ईख आदि पीलने के यन्त्र का व्यापार करना यन्त्र पीड़नकर्म है।[6] घाणी

---

1. 'रसवाणिज्यं' सुरादिविक्रयः।।
उपा०टीका, पृ० 43
2. नवनीत-वसा-क्षौद्र-मद्यप्रभृतिविक्रयः।।
योग०, 1/108
3. 'विषवाणिज्यं' जीवघात प्रयोजनशस्त्रादिविक्रयोपलक्षणं।।
उपा०टीका, पृ० 43
4. विषास्त्रहलयन्त्रायोहरितालादिवस्तुनः।
विक्रयो: जीवतहनस्य विषवाणिज्यमुच्यते।।
योग०, 3/109
5. केशवाणिज्यं केशवतां दासगवोष्ट्रहस्त्यादिकानां विक्रयरूपं।।
उपा०टीका, पृ० 43
दे०योग० 3/108
6. 'यन्त्रपीडनपकर्म' यन्त्रेण तिलेक्षुप्रभृतीनां यत्पीडनरूपं कर्म तत्।। उपा०टीका, पृ० 43

में पीलकर तेल निकालना, कोल्हू में पीलकर इक्षु रस निकालना, सरसों, अरंड आदि का तेल यन्त्र से निकालना, जलयन्त्र–रहट चलाना, तिलों को दलकर तेल निकालना और बेचना–ये सब यन्त्रपीड़न कर्म हैं। इन यन्त्रों द्वारा पीलने से तिल आदि में रहे अनेक त्रसजीवों का वध होता है।[1] अतः यह श्रावक के लिए त्याजनीय है।

12. निल्लंछन कम्मे (निर्लाञ्छन कर्म)

जीवों के नाम, कान, पूंछ आदि का छेदन करना निर्लाञ्छनकर्म है।[2] योगशास्त्र में भी बतलाया गया है कि जीव के अंगों या अवयवों का छेदन करना, उस कर्म से अपनी आजीविका चलाना निर्लाञ्छनकर्म है।[3] यह भी त्याज्य है।

13. दवग्गिदावणया (दावाग्निदापन)

जंगल में आग लगाना व लगवाना दावाग्नि दापन कर्म कहलाता है। यह जंगल की आग अनियन्त्रित होती है। उस आग के लगने पर तत्रस्थ अनेक त्रस जीवों का भी संहार होता है। इसलिए दावाग्नि–दापन–कर्म श्रावक के लिए सदैव वर्जित बतलाया गया है।[4]

14. सरहदतलाय सोसणया (सरोह्रद तड़ाग शोशणम्)

बिना खोदी जमीन में स्वाभाविक जलाशय, सरोवर, नदी आदि के नीचे रहने वाले जलस्थल को ह्रद बतलाया गया है। ऐसा कृत्रिम जलाशय तड़ाग है। सरोवर, ह्रद, तालाब, कुआं, बावड़ी आदि के जलन को गेहूं आदि बोने के लिए सुखाना या उपयोग करना सरोह्रद तड़ाग शोषणम् कहलाता है।[5] यह अनुचित कार्य भी निंदनीय माना गया है।

---

1. तिलेक्षु–सर्षपैरण्डजलयन्त्रादि पीडनम्।
   दलतैलस्य च कृतिर्यन्त्रपीडा प्रकीर्तिता।। योग० 1/110
2. निर्लाञ्छनकर्म–वर्धितकरणं।। उपा०टीका, पृ० 43
3. नासावेधोऽगनं मुष्कच्छेदनं पृष्ठगालनम्।
   कर्ण–कम्बल–विच्छेदो निर्लाञ्छनमुदीरितम्।। योग०, 3/111
4. दवाग्ने–वनाग्नेर्दानं–वितरणं क्षेत्रादिशोधननिमित्तं दवाग्निदानमिति।।
   उपा०टीका, पृ० 43
5. सरोह्रद तड़ागपरिशोषणता तत्र सरः स्वभावनिष्पन्नं ह्रदो–नद्यादीनां
   निम्नतरः प्रदेशः, तड़ागं–खनन सम्पन्नमुत्तानविस्तीर्णजलस्थानं
   एतेषां शोषणं गोधूमादीनां वपनार्थं–उपा०टीका, पृ० 43 तथा दे०योग० 1/113

15. असई जणपोसणया (असतीजन पोषणता)

दुष्टदासी या व्यभिचारिणी स्त्री आदि का पोषण करके उसके व्यापार से आजीविका चलाना तथा क्रूर कर्म करने वाले हिंसक जीवों का पोषण करना असतीजन पोषणता है।[1] दुष्टाचार वाले तोता, मैना, बिल्ली, कुत्ता, मुर्गा, मोर आदि तिर्यंचों का पोषण करना और धन प्राप्ति के लिए व्यभिचार के द्वारा दास–दासी से आजीविका चलाना भी असतीजनपोषण है।[2]

ऐसे हिंसा प्रधान कर्म श्रावक के लिए वर्जित हैं। पन्द्रह कर्मादानों के अतिरिक्त अन्य भी ऐसे कर्म (व्यवसाय) हैं, जिनसे महापाप लगता है। इनमें कसाईखाना, शिकारखाना, द्यूतक्रीड़ा केन्द्र, वेश्यालय, चौर्य कर्म आदि विशेष हैं।

बौद्धनिकाय ग्रंथ दीर्घनिकाय के प्रथम ब्रह्मजालसुत्त में ऐसे अनेक निरर्थक एवं निन्दनीय खोटे कर्मों एवं आजीविका के साधनों की चर्चा की गयी है जिन्हें गौतम बुद्ध ने अपने जीवन में अथवा जन्मान्तर में कभी भी नहीं अपनाया। उन्होंने अपने अनुयायियों को उनसे दूर रहने की प्रेरणा दी करण कि वे अकरणीयकर्म सत्त्वों को भवान्तर में भटकाते रहते हैं।[3]

3. अनर्थ दण्ड विरमण व्रत

मन–वचन–काय को दण्ड कहते हैं, बिना प्रयोजन के उनकी प्रवृत्ति करना अनर्थदण्ड कहलाता है और इनको रोकना अनर्थदण्डविरमणव्रत है। इस क्रिया से बचने के लिए श्रावक प्रयोजन पापमय क्रियाओं को नहीं करता। इस प्रकार दिग्व्रत में की गई मर्यादा के भीतर प्रयोजन रहित पाप बन्ध के कारण मन, वचन और काय की प्रवृत्तियों से विरक्त होना अनर्थदण्डविरमणव्रत है।[4]

श्वेताम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थों में अनर्थदण्ड से सम्बंधित प्रयोजनभूत पापकर्म के निम्न चार भेद किए हैं–अपध्यानाचरित, प्रमादाचरित, हिंस्रप्रदान और पापोपदेश।[5] दिगम्बर परम्परा के अधिकांश ग्रन्थों में पाप की पाँच प्रवृत्तियों को

---

1. असतीजनपोषणता, असतीजनस्य दासीजनस्य पोषणं तद्घाटिकोपजीवनार्थं
   यत्तत तथा, एवमन्यदपिक्रूरकर्मकारिणः प्राणिनः पोषणमसतीजनपोषणमेवेति।।
   उपा०टीका, पृ० 43
2. सारिकाशुकमार्जारश्व–कुर्कुट–कलापिनाम्।
   पोषोदास्याश्चर्त्तिकार्थमसतीपोषणं विदुः।।
   योग०, 3/112
3. दे० दीघनिकाय भाग–1, पृ० 5–12
4. अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।
   विरमणमप्यदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः।।
   रत्न०करण्ड०, 4/8
5. उपा०सू०, 1/39
   तथा दे०आव०सू०, अणुव्रत–8

अनर्थकारी बतलाया गया है। उपासकदशांगसूत्र में वर्णित चार पापकर्मों के अतिरिक्त एक अन्य पापकर्म दुःश्रुति भी है।[6] ये पाँचों अनर्थदण्डव्रत है :

(क) अपध्यानाचरित

अपध्यान का संक्षिप्त अर्थ है–दुश्चिन्ता। आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान का चिन्तन करना अपध्यानाचरित है।[2] शत्रु का नाश करना, राजा व नेता बनने के लिए खटपट करना, नगर में तोड़फोड़ या दंगे करना, करवाना, आग लगाना, अन्तरिक्ष यात्रा के चिन्तन रूप कुध्यान में डूबे रहना अपध्यानाचरित अनर्थदण्ड है।[3] इसके अतिरिक्त द्वेषपूर्वक किसी प्राणी का वध, किसी का बन्ध अथवा छेदनादि का चिन्तन करना अथवा राग से परस्त्री आदि का चिन्तन मात्र भी अपध्यान नामक अनर्थदण्डव्रत ही कहलाता है।[4]

(ख) प्रमादाचरित

प्रमाद के वश होकर पाप रूप विकथा करना एवं तेल, घी, दूध आदि को ढकने में प्रमाद करना प्रमादाचरित है।[5] इसके अलावा भूमि खोदना, वृक्ष तोड़ना, दूर्वा-घास रोंदना, जल सींचना, आग जलाना व बुझाना, पत्र, फल-फूल तोड़ना प्रमादचर्या है।[6] इस प्रकार कुतूहलपूर्वक गीत, नृत्य, नाटक आदि देखना, कामशास्त्र में आसक्ति, जुआ खेलना, मदिरा आदि का सेवन, जलक्रीड़ा, झूले का विनोद करना, आनन्द लेना, पशु पक्षियों को आपस में लड़ाना, शत्रु के पुत्र के साथ भी वैर विरोध करना, स्त्रियों की खाने-पीने की, देश एवं राजा की व्यर्थ की ऊलजलूल विकथा करना, रोग या प्रवास की थकान को छोड़कर सारी रात भी सोते रहना–इत्यादि प्रमादाचरित अनर्थदण्डव्रत ही है।[7]

1. रत्न०, 4/9; तथा दे० कार्ति०, 47; सागार०, 5/10
2. अपध्यानम्-आर्त्तरौद्ररूपं तेनाचरितः-आसेवितो योऽनर्थदण्डः।
   उपा०टीका, पृ० 23
3. वैरिघातो नरेन्द्रत्वं पुरघाताऽग्निदीपने।
   खेचरत्वाद्यपध्यानं, मुहूर्तात्परतस्त्यजेत्।।
   योग०, 3/75
4. रत्न०, 4/12
5. 'प्रमादाचरितमपि' लवरं प्रमादो-विकथारूपोऽस्थगिततैल भाजन धरणादि रूपो वा।।
   उपा०टीका, पृ० 23
6. भूमिखननवृक्षमोट्टनशाड्वलदलनाम्बुसेचनादीनि।
   निष्कारणं न कुर्याद्दलफलंकुसुमोच्चयानपि च।।
   पुरुषार्थ० 143
7. योग०, 78-80

(ग) हिंस्र प्रदान

जिससे हिंसा होती है, वह अस्त्र-शस्त्र, आग विष आदि हिंसा के साधनों को क्रोधाविष्ट व्यक्तियों के हाथ में दे देना हिंस्र प्रदान अनर्थदण्डव्रत है।[1]

(घ) पापोपदेश

पापकर्मोपदेश (व्यर्थ ही भूमि को खोदना), अग्नि जलाओ, अमुक को मारो–इत्यादि पाप का उपदेश देना पाकर्मोपदेश अनर्थदण्ड है।[2] तिर्यञ्चों को क्लेश पहुँचाने वाले व्यापार का उपदेश, आरम्भहिंसा से दूसरों को छलने की कथाओं का प्रसंग उठाना–पापोपदेश अनर्थदण्डव्रत कहलाता है।[3]

(ङ) दुःश्रुति

कुमार्ग प्रतिपादक शास्त्रों को सुनना, मण्डन, वशीकरण, कामशास्त्र और अन्य लोगों के दोषों को सुनना दुःश्रुति अनर्थदण्डव्रत कहा गया है।[4]

इस प्रकार जैन दर्शन में अनर्थदण्डव्रत के कहीं चार तो कहीं पांच भेद स्वीकार किए गए हैं।

अनर्थदण्डव्रत के अतिचार

अन्य व्रतों की तरह अनर्थदण्डव्रत के भी पांच अतिचार आचार्यों ने स्वीकार किए हैं। उपासकदशांगसूत्र के अनुसार कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, संयुक्ताधिकरण और उपभोग परिभोगातिरेक–ये पाँच अतिचार हैं।[5] तत्त्वार्थसूत्र में संयुक्त पद के

1. हिंस्र-हिंसाकारि शस्त्रादि तत्प्रदानं परेषाम् समर्पणं।।
   उपा०टीका, पृ० 23
   विशेष के लिए देखिए, रत्न०, 4/11
2. पापकर्मोपदेशः क्षेत्राणि कृषत इत्यादिरूपः।।
   उपा०टीका, पृ० 23
3. तिर्यक्क्लेशवाणिज्याहिंसारम्भ प्रलम्भनादीनाम्।।
   कथाप्रसंगप्रसवः स्मर्त्तव्यः पापः उपदेशः।। रत्न० 4/10
4. रत्न०, 4/13
5. तयाणंतरं च णं अणट्ठदंडवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा
   जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा-कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए,
   संजुत्ताहिगरणे, उवभोगपरिभोगाइस्ते।।
   उपा०सू०, 1/48

स्थान पर असमीक्ष्य पद को ग्रहण कर पांच अतिचार माने गये हैं[1] जबकि रत्नकरण्डकश्रावकाचार के रचनाकार ने कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य–इन तीन अतिचारों को ज्यों का त्यों लिखा है और चौथा अतिप्रसाधन तथा पांचवा असमीक्ष्याधिकरण को अनर्थदण्डव्रत का अतिचार बतलाया है।[2] सागारधर्मामृतकार पं० आशाधर ने कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण और सेव्यार्थाधिकता ये पाँच अनर्थदण्डव्रत के अतिचार माने हैं।[3]

इस प्रकार विविध आचार्यों ने अनर्थदण्डविरमणव्रत के जो अतिचार स्वीकार किए हैं, उनमें प्रारम्भिक तीन–कन्दर्प, कौत्कुच्य और मौखर्य में कोई भिन्नता नहीं है, किन्तु शेष दो अतिचारों के नामों में सर्वत्र आंशिक भिन्नता है। यह भिन्नता भी शब्दगत अधिक प्रतीत होती है, भागवत उमनें कोई भिन्नता नहीं है।

कन्दर्प

काम विकार को उत्पन्न करने वाले अर्थात् राग से मोह को उद्दीपन करने वाले हास्यपूर्वक वचन बोलना कन्दर्प अतिचार है।[4] राग की तीव्रता से हास्य मिश्रित अशिष्ट वचन कन्दर्प कहलाते हैं।[5] ऐसे राग की अधिकता से पुष्ट हास्य मिश्रित अशिष्ट वचनों को बोलना सर्वथा वर्जित कहा गया है।

कौत्कुच्यम्

भांडों के समान मुख व आँख आदि की कुचेष्टाएँ करना कौत्कुच्य है।[6] राग

1. कन्दर्प कौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगाधिकत्वानि।।
   त०सू०, 7/27
2. कन्दर्प कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च।
   असमीक्ष्य चाधिकरणं वयतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः।। रत्न० 4/15
3. सागार० 5/12
4. कन्दर्पः कासस्तद्धेतुर्विशिष्टो ववाक् प्रयोगोऽपि कन्दर्प उच्यते,
   रागोद्रेकात् प्रहासमिश्रं मोहोद्दीपकं नर्मेति भावः।। उपा०टीका, पृ० 45
5. अस्ति कन्दर्पनामापि दोषः प्रोक्तव्रतस्य यः।
   रागोद्रकात्प्रहासाहिमिश्रो वाग्योग इत्यपि।।
   लाटी०, 5/141
   तथा मिलाइए सर्वार्थ०, 7/32
6. 'कुक्कुइए' त्ति कौत्कुच्यम् अनेकप्रकारा मुखनयनादिविकार पूर्विका
   परिहासादिजनिका भाण्डानामिव विडम्बनक्रिया।।
   उपा०टीका, पृ० 45

की तीव्रता से शरीर की दुष्ट क्रिया करना भी कोत्कुच्य है जैसे अपने शरीर से अन्य स्त्रियों का शरीर स्पर्श करना, भौंह चलाना, आँखें मटकाना आदि सब काम को बढ़ाने वाली शरीर की कुचेष्टाएँ कौत्कुच्य कहलाती हैं।[1] बौद्धदर्शन में इसे प्रथम नीवरण माना गया है।

मौखर्य

निर्लज्ज होकर असत्य और स्वच्छन्द बकवास करना मौखर्य अनर्थदण्ड व्रत अतिचार है। यह अतिचार प्रमाद व्रत के या पापकर्मोपदेश के सेवन के बिना विचार पूर्वक बकवास करने से लगता है।[2] काम को बढ़ाने वाले अत्यन्त निन्दनीय सैंकड़ों वचन कहना, धृष्टापूर्वक बहुत बक–बक करना भी मौखर्य ही है। इससे पाप कर्मों का बन्ध होता है।[3] अतः इससे सदैव बचना चाहिए। बौद्धधर्म में इसी अर्थ में संभिन्न सम्फलाप पद मिलता है जिसका अर्थ है–निरर्थक चर्चा करना।

संजुताहिगरणे

औखली, मूसल, चक्की आदि कूटने पीसने आदि का साधन तैयार करके रखना कि दूसरे को आवश्यकता हो, तो वह अपना काम सिद्ध कर ले, संयुक्ताधिकरण अनर्थदण्ड अतिचार कहलाता है।[4] बिना आवश्यकता के हिंसक हथियारों एवं ऐसे धनुष–बाण तथा बन्दूक आदि साधनों को संग्रह करके रखना संयुक्ताधिकरण है।

उपभोग-परिभोगातिरेक

उपासकदशांगटीका में उपभोग और परिभोग वस्तुओं को अपने कार्य से अधिक रखना उपभोग–परिभोगातिरेक है। जैसे–स्नान करने का उष्ण जल अथवा आँवला, उबटन, असन–पान एवं भोजन इत्यादि उपभोग की वस्तुओं और मकान आदि परिभोग पदार्थों को अपेन काम से अधिक रखना उपभोग परिभोगगातिरेक

1. लाटी०, 5/142
2. उपा०टीका, पृ० 45
3. मौखर्यदूषणं नाम रतप्रायं वचः शतम्।
   अतीव गर्हितं धाष्टर्याद्यद्वात्यर्थं प्रजल्पनम्।।
   लाटी०, 4/143
4. संयुक्तम्–अर्थक्रियाकरणक्षमधिकरणं–उदखल मुशलादि।
   उपा०टीका, पृ० 45
   दे०जैन०सि० और स्व०, पृ० 332

कहलाता है।[1] जिन पदार्थों की सम्भावना ही नहीं है, जो पदार्थ असम्भव है, उनका परिमाण करना अथवा जो पदार्थ अपनी योग्यता से बाहर है, अपनी योग्यता के अनुसार जिन पदार्थों का प्राप्त होना असम्भव है, ऐसे पदार्थों का त्याग करना या परिमाण करना अनर्थदण्डव्रत का अतिचार है।[2] यह अतिचार भी सर्वथा त्याज्य है।

3. शिक्षाव्रत

शिक्षा की प्रधानता के कारण यह व्रत शिक्षाव्रत कहलाता है। आचार्यों ने शिक्षा का अर्थ करते हुए कहा है कि जिसके कारण अभ्यास में प्रवृत्ति हो, जो सीखने योग्य है, वह शिक्षाव्रत है।[3] जैसे–विद्यार्थी पुनः-पुनः अभ्यास करता है, वैसे श्रावक भी व्रतों का पुनः-पुनः अभ्यास करता है, यही शिक्षाव्रत है। अणुव्रत एवं गुणव्रत जीवन में एक बार ग्रहण किए जाते हैं। परन्तु शिक्षाव्रत को बार-बार अभ्यास हेतु काल विशेष के लिए किया जाता है। बौद्धदर्शन में भी भिक्षुओं के लिए शैक्ष्यधर्मों का निर्देश मिलता है।[4]

यद्यपि उपासकदशांगसूत्र में सत्त सिक्खावइयं[5] कहकर सात शिक्षा व्रत कहे गए हैं, किन्तु सूत्रकार ने इन्हें दो मार्गों में विभक्त कर स्पष्ट समझाया है। वे भेद हैं–तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। जो चार शिक्षाव्रत बतलाए गए हैं वे हैं–सामायिक, देशावकाशिक, प्रोषधोपवास और अतिथिसंविभागव्रत।

शिक्षाव्रतों के लिए श्रावक का यह मनोरथ रहता है कि 'ऐसी मेरी श्रद्धा प्ररूपणा तो है, स्पर्शना करूं, तब शुद्ध होऊं। जैसे-सामायिक कभी कम बने, ज्यादा बने अथवा नहीं बने, चौदह नियम आदि कभी याद नहीं रहे, दया पौषध का अवसर कभी हो अथवा कभी न हो तथा अतिथि संविभागव्रत की स्पर्शना भी साधु-साध्वी का योग मिलने पर सम्भव है।

अतः उपासकदशांगसूत्र में चार शिक्षाव्रतों का उल्लेख न होकर उनके अतिचारों

1. उपभोग परिभोगविषयभूतानि यानि द्रव्याणि स्नानप्रक्रमे
   उष्णोदकोद्वर्तन कामलकादिनि भोजनप्रक्रमे अशनपानादिनि तेषु यदतिरिक्तम्।।
   उपा०टीका, पृ० 45
2. आनर्थक्यं तयोरुक्त स्याद सम्भविनोर्द्वयोः।
   अनात्मोचित्तसंख्यायाः कराणादपि दूषणम्।।
   लाटी०, 5/148
3. सागार०, 4/4, पृ० 28
4. दे०, पातिमोक्खसुत्त-शैक्ष्यधर्म।
5. उपा०सू०, 1/12

का जो उल्लेख है, उससे स्पष्ट है कि वैसे तो श्रावक आनन्द ने अमुक प्रकार से शिक्षाव्रत भी ग्रहण किए ही होंगे, तभी उन्हें बारह व्रतधारी श्रावक बतलाया गया है।

1. सामायिक व्रत

शिक्षाव्रतों में प्रथम स्थान सामायिक का है। सामायिक का अर्थ है–जीवन में समता को धारण करने व उतारने का अभ्यास करना। वस्तुतः सामायिक से सावद्य योगों की निवृत्ति होती है।[1] उपासकदशांगटीका में सामायिक का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है कि राग-द्वेष से रहित होकर जो समस्त प्राणीमात्र को आत्मतुल्य देखे, वह सम और इससे निरूपम सुख का हेतुभूत और चिन्तामणि कल्पवृक्ष को तिरस्कृत करने वाले जो प्रत्येक समय में अपूर्व ज्ञान, दर्शन एवं चरित्र के पर्यायों का लाभ लेना है, वह समाय है। यह समाय ही है अनुष्ठान तथा प्रयोजन जिसका ऐसा वह सामायिकव्रत है।[2]

वस्तुतः दो करण और तीन योग से समस्त सावद्य योगों का काल विशेष तक त्याग करने का नियम लेना सामायिक कहलाता है।[3] शुद्ध आत्मा के स्वरूप का चिन्तन करने को लाटी संहिता में सामायिक कहा गया है।[4] पंडित आशाधर ने अपनी कृति सागारधर्मामृत में वस्त्र बन्ध पर्यन्त सम्पूर्ण राग-द्वेष और हिंसा आदि पापों का परित्याग करके आत्मध्यान विशेष को सामायिक स्वीकार किया है।[5]

इस प्रकार महापुरुष व्रत में पाप व्यापार का परित्याग कर समत्व को धारण करते हैं। वास्तव में सामायिक चित्त को स्थिर बनाने की एक प्रक्रिया विशेष है।[6]

सामायिक का समय

सामायिक का समय एक मुहूर्त निश्चित किया गया है,[7] फिर भी इसके लिए

1. सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ।।
   उत्तरा०सू०, 28/9
2. सामाइयस्स त्ति समो-रागद्वेषविमुक्तो यः सर्वभूतान्यात्मवत्पश्यति तस्य
   आयः प्रतिक्षणमपूर्वज्ञानदर्शन चारित्रपर्यायाणां निरुपमसुखहेतुभूता नामधः
   कृतचिन्तामणि कल्पद्रुमोपमानां लाभः समायः सः प्रयोजनमस्यानुष्ठानस्येति सामायिकं।।
   उपा०टीका, पृ० 47
3. आव०सू० अणुव्रत 9 तथा दे०रत्न०, 5/7
4. लाटी०, 5/152
5. सागार०, 5/28
6. (महा० उज्जवल कुमारी) श्रा०ध०, पृ० 138
7. मुहूर्त समता या तां विदुः सामायिक व्रतम्।। योग० 3/82